International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 72-72

महिला और सामाजिक ढांचे का दृष्टिकोण

मनोज कुमार
Department of History, University of Rajasthan, Jaipur, Rajasthan, India

प्रस्तावना

परिवार और समुदाय के पुरूषों के मुकाबलें महिलाएं अपनी और दूसरों की जिदंगी में अधिक परिवर्तन लाती है। इस बात को मान्यता देना सामाजिक नीति का एक महत्वपूर्ण आधार होना चाहिए। सामाजिक नीतियां अक्सर इस अनुमान पर आधारित होती है। कि महिलाएं कुछ मायनों में कमजोंर होती है और उन्हें समर्थन की अधिक जरूरत होती है। वे खुद का बचाव नहीं कर सकती और पुरूषों और बाहरी दुनिया से कमतर होती है। लेकिन वास्तविकता में इसका एकदम उलट है–खासकर जब हम उन परिवारों या घरों की तरफ देखते है जहां गरीबी बहुत अधिक है।

ऐसे परिवारों की बुनियादी जरूरतों जैसे पानी, ईधन, खाना और देखभाल का इंतजाम महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। इसके अलावा अधिकतर घरों में महिलाएं ही सभी वस्तुएं जुटाती है–चाहे वह धन हो या कोई वस्तु। अकाल जैसी स्थितियों में जब खेत–खलिहान सूख जाते है और परिवारों को अन्न उपलब्ध नहीं होता तो अक्सर महिलाएं ही परिवार का पेट भरने के लिए जुगत लगाती हैं– कंदमूल खोदती है, फल तोड़कर लाती है।

परिवारों, समुदायों और समाज के जीवन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है जिसके आधार पर सामाजिक सहयोग की नीति का निर्माण किया जाना चाहिए। इस पर नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन का कहना हैः 'हमें मानव जाति को रोगी नहीं, ऐसा माध्यम समझना चाहिए जिनके जरिये प्रभावी कार्य संभव हैंः व्यक्तिगत और संयुक्त, दोनों रूपों से। हमें सिर्फ यह नहीं सोचना चाहिए कि उनकी भूमिका मात्र उपभोक्ता या जरूरतमंद व्यक्तियों की है। इससे आगे बढ़ते हुए हमें व्यापक स्तर पर सोचना चाहिए कि वे परिवर्तन के वाहक है जो अगर अवसर मिले तो सोच–समझकर, आकलन और मूल्यांकन करके, हल निकालकर, प्रेरक बनकर, उत्तेजित होकर और इन साधनों का उपयोग करते हुए दुनिया का रूप बदल सकते है।

महिलाओं को सामाजिक विकास नीतियों द्वारा सहयोग या समर्थन देने के मार्ग में अनेक बाधाएं रही है। सबसे पहली बाधा तो इन नीतियों को समझने के तरीके से उत्पन्न होती है। परिवारों पर 1970 के दषक की षुरूआत में, किए गए सर्वेक्षणों, जो आंकड़े, एकत्र करते थे, और नीतियों के निर्माण में मदद करते थे को इस तरह बनाया गया कि इसमें महिलाओं को कम सक्षम लोगों, जैसे विधवा, निराश्रित आदि की श्रेणी में रखा गया। ऐसा माना गया कि महिलाओं को बुनियादी तौर से सामाजिक कल्याण सेवाओं की जरूरत है। कई दषकों तक चले महिला आंदोलनों ने लोगों की सोच बदली। उन्हें समझाया कि महिलाएं किसी भी समुदाय या अर्थव्यवस्था में निर्णायक आर्थिक आधार होती है इसलिए उनके साथ सिर्फ यह सोचकर व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए कि समाज को उनका कल्याण करना है, बल्कि यह सोचना चाहिए कि महिलाएं अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है। उनके काम के बेहतर परिणाम प्राप्त हों, इसके लिए उनकी भूमिका को मान्यता दी जानी चाहिए। उन्हें मौद्रिक पुरस्कार मिलना चाहिए तथा उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक सहयोग दिया जाना चाहिए।

व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर आंकड़े एकत्र करने के प्रयासों में भी सुधार की जरूरत है। सर्वेक्षणों मे अक्सर पुरूषों को अपने परिवार का मुख्य कमाऊ सदस्य बताया जाता है जबकि महिलाओं को उनके बाद जगह मिलती है। वे पुरूष सदस्यों की सहायक मानी जाती है या फिर उनकी आश्रिता।

अपने अध्ययनों मं रेनाना झबवाला भी यहां कहती है – 'महिलाएं अक्सर अदृष्य होती है और श्रमिक के रूप में उन्हें मान्यता नहीं मिलती। इसका कारण यह है कि सबसे पहले तो वे औरतें होती है और दूसरा यह कि वे अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा होती है जो अधिकतर दबी–छिपी होती है। अर्थव्यवस्था मे उनके काम और योगदान को परिवार ओर समुदाय में उनके योगदान को कम करके आंका जाता है, खास तौर से इसलिए क्योंकि वे घरों में काम करती है, घरेलू कामगार या नौकर होती है, परिवार के कारोबार या खेतों मे बिना वेतन के हाथ बंटाती है।

हमारे समाज में कमजोर वर्ग की, गरीबी के कुचक्र में फंसी महिला अपनी बड़ी बेटी के भरोसे घर काम छोड़कर–मीलों चलकर ईधन और पानी इकट्ठा करती है। कितना ही अच्छा हो कि ऐसी महिलाओं को ऐसी सामुदायिक सेवा की सुविधा दी जाए। यहां वह अपने बच्चे को क्रेच में छोड़ सकेगी, उसके लिए समान ईधन स्रोत पर चपातियों बना सकेगी, अपने कपड़े धोएगी और फिर काम पर चली जाएगी।

सत्तर के दषक में हमने नीति निर्धारकों के समाने बेहद चौंकाने वाले आंकड़े प्रस्तुत किए। हमने प्रदर्षित किया कि महिलाओं की मृत्यु दर और उनकी श्रम भागीदारी दरों की बीच समानता थी। 20–35 वर्ष के आयु वर्ग की महिलाओं की श्रम भागीदारी दर सबसे अधिक थी। हमने पाया कि इसी आयु समूह की महिलाओं में मृत्यु दर भी अधिक है। यह विषेष रूप से भारत के सबसे गरीब क्षेत्रों में, जिन्हें बीमारु राज्य भी कहते है। बिहार, मध्य प्रदेष, राजस्थान, उत्तर प्रदेष में अधिक था। आंकड़ो से पता चलता था कि महिलाओं पर किस प्रकार अपने परिवार को चलाने का दबाव होता है। जो उनकी श्रम भागीदारिता बढ़ाता है लेकिन इसका असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है क्योंकि उन्हें कई दूसरे कार्य भी करने होते है। कहने का अर्थ यह है कि जब हम निर्धनतम वर्गो की बात करते है तो हमें यह सोचना होगा कि किस प्रकार सामाजिक कल्याण की नीतियों को महिलाओं की आर्थिक भूमिकाओं से जोड़ा जाए।

हालांकि इन उपायों को प्रभावी तभी बनाया जा सकता है। जब महिलाओं और वंचित समूहों की ओर ध्यान दिया जाए और सरकारी योजनाओं में उन्हें केन्द्र मे रखा जाए। उदाहरण के लिए योजना प्रक्रिया के सर्वेक्षणों में यह सुनिष्चित किया जाना चाहिए कि महिलाओं के विचारों को सुना जाए, विषेष रूप में समूह चर्चा के माध्यम से। समुदाय के महिला नेतृत्व को चिह्नित किया जाए और विभिन्न क्षेत्रों के लिए बनी समितियों में उन्हें षामिल किया जाए जिससे यह सुनिष्चित हो कि सामाजिक विकास के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों जैसे बुनियादी ढांचे, सार्वजनिक भूमि के प्रयोग प्राकृतिक संसाधनों और रोजगार के संबंध में योजना बनाते समय महिलाओं के हितों का ध्यान रखा जाएगा।

संदर्भ

1. एंटोनोपोलस, आर (2009)ः द अनपेड केयर वर्क–पेड कनेक्षन (वर्किंग पेपर 86), पॉलिमी इंटीग्रेषन एंड स्टैटिक्स डिपार्टमेंट, अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, जिनेवा।
2. जेन, देवकी (2001)ः द लुकिंग ग्लास, ऑफ पावर्टी, न्यू हॉल, कैब्रिज में प्रस्तुत पेपर।
3. जैन, देवकी (1985)ः द हाउसहोल्ड ट्रैपः ट्रैनी ऑफ द हाउसहोल्डः इनवेस्टिगेटिव एसेज ऑन विमेन्स वर्क में महिलाओं की गतिविधियों के पैटर्न पर की गई फील्ड स्टडी जैन, डी और बैनर्जी एन, द्वारा संपादित, षक्ति बुक्स, विकास प्रकाषन हाउस, भारत।
4. जैन, देवकी (1979)ः वैल्यूइंग वर्कः टाइम एस अ मेजर इकोनांमिक एंड पॉलिटिकल वीकली वॉल्यूम प्प्, नंबर 43,26 अक्तूबर 1996, औश्र इंस्टीट्यूट ऑफ सोषल स्टडीज ट्रस्ट, इपैक्ट ऑन विमेन वर्कर्स–महाराष्ट्र रोजगार गारंटी योजना, आईएलओए जिनेवा द्वारा प्रायोजित एक अध्ययन।
5. जैन.डी. (2006)ः विमेन्स इकोनॉमिक रीजनिंग एंड डेवलपमेंट इकोनॉमिक्सः कुछ वर्गो पर एक चर्चा।